



# अमरलता

[ ऐतिहासिक शौर्य-काव्य ]



लेखक  
यह्नानी, यन्दनवार, चित्रपट  
और उत्सर्ग आदि  
के  
रचयिता

शम्भूदयाल सक्सेना



प्रकाशक  
रमेशचन्द्र वर्मा  
नवयुग-ग्रंथ-कुटीर,  
फर्रुखाबाद

प्रथम संस्करण } {

१९३३

{ मुख्य-आठ-आना



## सर्ग-सूची

सर्ग	प्रथम पक्ति	पृष्ठ
१—धीर मोहिलपति की कन्या		१
२—पहन रवि किरणों की माला		१४
३—निशा का शीशफूल प्यारा		२५
४—राम ने पायी थी सीता		३८
५—पूर्व जानुमान यथार्थ हुआ		५०
६—उस समय या मध्याह्न प्रहर		६१
७—पोछकर या सुहाग-टीका		७५
८—यही है कोइमदेसर पुण्य		९४





## निवेदन

अपनी शरणागतता को मैं जानता हूँ, पर 'उत्सव' पढ़कर मित्रों का आग्रह किया या कि मैं और भी वीरतापूर्ण कहानियाँ लिखूँ। उन्हीं की आज्ञा का यह पालन किया गया है।

मध्य-युग में राजस्थान शौर्य और वीरता का भूतना रहा है। ठाढ़ साहस का यह कहना अचरित सत्य है कि 'यहाँ ( राजस्थान ) का हर एक गाँव स्पाटों और हर एक घाटी धर्मापली है।' लेकिन दुर्भाग्य से हमारा अधिकांश शौर्य प्रदर्शन आपसी झगड़ों तक ही सीमित रहा। उसको उसी रूप में याद करने से जो दुःखता है। सोने की स्याही से लिखी जानेवाली घातें एक विशाल जाति के इतिहास को कलंकित करने की सामग्री बन गई हैं। मैं अच्छी तरह लिख नहीं सका हूँ, पर प्रस्तुत कहानी का कथानक शायद सत्तार के इतिहास में एक दुर्लभ वस्तु है।

युद्ध आदि का जैसा चाहिए वैसा वर्णन न होने का यही कारण है कि पद पद पर लेखनी देश के दुर्भाग्य पर रो पड़ती थी, और जान बूझकर उसकी उपेक्षा की गई। अन्त में सती के अभिशाप के शब्द इतिहासानुमोदित न होने पर भी असाध्य नहीं हैं। एक गहरी अनेक सतिया के मर्मोच्छ्वासों का ही परिणाम है कि आज सत्तार में हमारा कोई अस्तित्व नहीं रह गया है, और तबतक हम पतन के गन्त से कदापि नहीं निकल सकेंगे जबतक अपने पूर्वजों का अच्छी तरह प्रायश्चित्त नहीं करते।

—लेखक





अमरलता





# अमरलता

[ १ ]

[मोहिलपति, माणिकराज, का कन्या का नाम कोइमद था। पिता ने महोरपति अटकमल शठौर से उसके विवाह की बातचीत की। सती क सुँह से यह हाल सुनकर राजकुमारी ने बताया कि वह तो मन में किसी और ही को वरण का चुका है।]

वीर मोहिलपति की कन्या,  
विश्व में हुई एक धन्या।  
रूप की वह थी सोम-सुधा,  
विभासित<sup>१</sup> उसमें थी वसुधा।

दिव्य मणि थी वह मरुधर<sup>२</sup> की,  
गर्व-नारिमा थी घर घर की। ६

१ चाँदनी। २ प्रकाशमान। ३ मरुम्यल।

रली-मी वह मुकुमारी थी,  
 प्रम-सी सजको प्यारी थी ।  
 ज्योत्सना<sup>१</sup> उस चन्द्रानन<sup>२</sup> की,  
 निशा हस्ती थी सानन की ।

रम्य वह राजस्थान बिभा,  
 विजय-करि री-नी थी प्रतिभा । १७

रूप में भी अनूप था मन,  
 नेत्रों का प्याग गोरवधन ।  
 वीरता पर वह भरता था,  
 घृणा कायर में करता था ।

न्या से भोगा था फण-करण,  
 त्याग-उपभय था नवजीवन । १८

१ चोँदनी ।      २ चन्द्रमुख ।

सखी ने आकर उमे कहा—

‘सुदिन हे वैसा आज अज्ञा १”

“हुआ क्या ?” उत्सुक हो बोली,

पिरी<sup>१</sup> ने रुष्ट-मुधा बोली ।

“घोषणा पुरस्कार की हो,

रतान में न चार<sup>२</sup> ही हो ।”<sup>२४</sup>

अधर पर गिली हास-रंज,<sup>३</sup>

शिखी<sup>४</sup> ने घन विलास देखा,

कली में अनिल<sup>५</sup> मिला नृदुत्तर,

गग मे लाम<sup>६</sup> मिला सुगहर ।

कहा—<sup>७</sup> स्या पुरस्कार तत्तर,

वृत्त बुद्ध ज्ञात न हो जयतक । ३०

१ क्रोयल । २ देर । ३ मयूर । ४ वायु । ५ नाच ।

पूर्ण विश्वास किन्तु करके,  
 हृदय को मधुरस से भग्के,  
 सजनि । है प्रभु से विनय यही—  
 करे वे जो में कहूँ वही ।

कल्पना-सा वर तुम्हें मिले,  
 शीघ्र तब प्रेम-सरोज मिले ।” ३६

चञ्चला<sup>१</sup> आँखों में चमकी,  
 दीप्ति<sup>२</sup> घर दौतों में दमरी,  
 पुलक से फुल्ल हुई काया,  
 प्रेम ने मन को नहलाया,

खील<sup>३</sup>-सी खिल खिल हमनोली<sup>४</sup>  
 मञ्जु स्मित<sup>५</sup> सहित मधुर धोली—४०

१ बिचला ।    २ चमक ।    ३ लाहरी लाजा ।    ४ मग्नी ।  
 ५ मुसकान ।

‘सत्य हो आशिर्यचन फले,  
प्रेम पावस’ के मेघ चलें,  
रसा रसमय हो जाय सभी,  
भाव मे भय<sup>१</sup> भर जाय सभी ।

किन्तु वह हो अलि । सब तेरा,  
ज्योंकि तेरा ही है मेरा ।” ४८

“पान कर-कर यह वाक्-सुधा<sup>२</sup>,  
रसमयी होती है वसुधा,  
मुलक्षण ये धन-कुसुम न हों,  
निम्नी नागर’ के भूषण हो ।

मिले इनका प्रेमी सत्वर<sup>३</sup>,  
कल म भर मञ्जु पुष्कर<sup>४</sup> ।” ५२

१ प्रेम रूपी वरसात ।    २ दुनियाँ ।    ३ वाणो का रम ।  
४ चनुर ।    ५ गोध ।    ६ जल जलाशय ।    ७

‘मालकर भावा की तरणी’  
 विहँसती बोली चरचरणो—  
 “तुम्हारा क्या मेरी प्रिय घटना’  
 कान में सच-सच तो कहना

स्वयं रहती भविष्य अपना,  
 सुना जा देगा है सपना ? ६०

बधाई माणिक्यराज-मुता’  
 मृगहृगी<sup>१</sup>, मुमुग्गी, हास-मुता ।  
 बधाई है मडोर-प्रिया’  
 प्रेम परिमल<sup>२</sup> -परिपूर्ण-हिया ।

सरस, पावन, पवित्र पथ-सी,  
 बधाई नयन राजमहिषी ।” ६६

१ नौका ।    २ हिरन से नेत्रशाली ।    ३ मुरभि, मइक ।

“नित्र भावों में भरती है,  
तरंगित सरिता करती है ।  
भटकती है, भटकाती है,  
भेद पर नहीं धताती है ।

शुभाशा करती है कैसी ?  
वधाई देती है कैसी ?” ७७

महेली ने मानन्द कहा—  
“जा रहा मन में मोल बहा,  
श्रवणकर यह सवाँ-सुधा,  
होगई वन्य आज वसुधा

कि ये राठौरवरा-पूषण<sup>१</sup> ।  
बहन ! होगे तब उर भूषण<sup>२</sup> ।” ७८



“तुमप्रेमिय ! किमने बहकाया ?  
 भरोमा तो भी क्या आया ?  
 तुमके है तृषा राज की क्या ?  
 भूत है साज-बाज की क्या ?

मान को क्या म भरती हैं ?  
 प्यार बेभर को करती हैं ? ८४

उद्यता बश और कुल की  
 फसौटी है क्या मानुष की ?  
 रूप-मोदर्य, रग-योवन,  
 निश्व मे हं क्या अक्षय धन ?

ज्याह क्या बहन प्रलोभन है ?  
 वासना का या बंधन है ? ९०

“मत्य सति । कथन तुम्हारा है,  
तुम्हें क्या वैभव प्यारा है ?  
किन्तु गुरुजन जो कुछ करते,  
सोचकर ही वे पग धरते ।

न गुण का आदर करते हैं ?  
मान ही पर क्या मरते हैं ?” ९६

“ममादर गुरुजन का करना,  
जन्तु अट्टाखलि<sup>१</sup> से भगना,  
शिष्टता<sup>२</sup> और मौन्यता है,  
सुजनता है, मानयता है,

प्रवीणे<sup>३</sup> । इसे न भूली है,  
तिमिर में फली न फली हैं । १००

मर्य मत्ता पर मरती हूँ ।  
 लाभ का आप परमती हूँ ।  
 हन्य यह मेरा अपना है,  
 मर्य भी डम पर अपना है ।

गुणों का बरती हूँ मजनी ।  
 'प्राप्त' पर मरती हूँ मजनी । १०८

न यौवन मन की चाह मुझ,  
 न गृहमन की परवाह मुझे,  
 शुभे ! क्षत्रिय-कन्या होकर,  
 हन्य को बेचगी म्योकर ?

उरण उर लिया जिमे मन मे,  
 उस रहा वह समस्त तन मे, ११४

अपर' को वहाँ प्रतिष्ठित कर,  
लहँगी कैसे मोद प्रवर,  
वडों की नाक रहेगी क्या ?  
रग को मार गहेगी क्या ?

वता तू ही कल्याणमयी ।  
मग्नी को कोई युक्ति नई । १२०

हृदय में दो प्रतिमा रखकर,  
पूजना होगा क्या सुन्दर ।”  
“वरण है किया गया किमको ?  
हृदय-इन लिया गया किमको ?

सुमुखि ! चतला ता जरा मुझे ।”  
‘कहूँगी किन्तु न अभी तुझे, १२६

नमय ह्रीं मय चतलायेगा,  
 म्वय पावस' घन लायेगा,  
 'वज्रनि' मन दिया गया जिनको,  
 भाग्य तो आये यदि उनमें,

सुकुचि जी तभी प्रशसाकर,  
 हर्ष म देगी तू घर भर ।" १३०

“भगोसा है रचि का तेरी,  
 फिन्तु वह रत्नो की देरी,  
 छिपा रगनी है उचित नही,  
 प्रेम में होता भेद कही ?

बहन । बहनापे<sup>१</sup> की याते,  
 जानती नहीं छद्म<sup>२</sup>-घाते ।" १३८

कुन्द-सी स्वच्छ हँसी हँसकर,  
 भुके दोनों के मुख-शागधर',  
 हुई बातें गुपचुप क्षणभर,  
 स्नेह-भागर में उठी लहर,

चित्र-चित्रित-सी छवि कोई,  
 ग्राम की आँखों ने रोई । १४४

—१५५—

[ ८ ]

[ पूजा का कामक भाटा राजरमार गादूल उस समय कपना  
 वीरगा ५ छिय राजरमार में ग्याना था । पद एक बार मोडिछपी  
 का छियावि बना । राजरमारी बोडमदे हमी वीर की वीरगा पर  
 गुप्त थी । ]

पाना रवि विरगा की माला,  
 पानर आतप' की ज्याना,  
 भग' थी रुई गमराणा,  
 रमाहन' था रग में दाना,

पदर म नैकता भा गा-ना  
 आनर' का गाना' नीरगा । \*

१ रग । २ रुई । ३ रवि । ४ वग । ५ रमाहन ।

समुन्नत अरावली-श्रेणी,  
मस्तक की विशाल वेणी,  
पूमकर घेर रही थी यों,  
मघन घन पटा धिरी हो ज्यो।

बीच में मैकत सिन्धु<sup>१</sup> उड़ा,  
भरि भनुरि<sup>२</sup> न रा जमड़ा। १०

निमी म माध्यम गण न था,  
र्ष<sup>३</sup> र्षण में रोग न था,  
न फटता था कोई मग में,  
धरा होती न नलित पग में।

यिजन था दिग्-प्राणी<sup>४</sup> मरुधर,  
छोर्वा में घघर रहे थे घर। १८

१ शाय या ससुद्र । २ गरम पृष्ठ । ३ घमट । ४ चारों तरफ फैला हुआ ।



न बिपश्य' डमते थे पग का,  
 मारते थे न सिंहा मृग को,  
 'अज्ञा भयभीत न थे घृह' में,  
 मशकित मीन न थे त्रक' में,

अरास से अलमिल थे चलकर,  
 ठोंम' में प्रसन्न जलकर । २७

होकर फिर भी तिन परिषद,  
 गौरव ने जाये द्वा भरकर,  
 भूतनी' किरण का स्वर,  
 गीत गाना ही करनार

मात का पग द स्वर,  
 गीत का य पौर दवर । २८

१ गीत । २ स्वर । ३ पौर । ४ दवर ।

सूर्य था वह भाटी-कुल का,  
विश्व विभुत<sup>१</sup> नृप पृगल का,  
उचित सादृल नाम पाकर,  
सिंह सम आज अतुल रसकर,

शूर योद्धाओं को धशकर  
जय-श्री वरता था घर घर । ३६

मन्ल शस्त्रास्त्र वर्म<sup>२</sup>-मञ्जित  
वीर भावो मे विनिमज्जित<sup>३</sup>,  
निकलता अश्वारूढ<sup>४</sup> जहाँ,  
धरा धँसती थी घड़ी-घड़ी ।

रंगु<sup>५</sup> उसके प्रताप-रवि से,  
चमकती थी अतुलित द्यधि से । ४७

१ दुनियाँ में मशहूर । २ कवच । ३ मन् । ४ घोड़े पर  
सवार । ५ राज ।

वायु बहता था सन सन सन,  
गगन में उठकर काले घन,  
हिमालय ढाने जाते थे,  
बिगड़ की वर्षा लाते थे,

रम्य उस पायस में भी क्या,  
शान्त मन पा था वह धिमय ? ४८

भाम्यो,<sup>१</sup> उज्ज्यावांशवुम्,<sup>२</sup>  
शौर्यं निर्मर,<sup>३</sup> भाम्य-मंजुल<sup>४</sup>,  
नेकर गुप्ट<sup>५</sup> सनग गते,  
दम्य भ उद्याला में गते ।

घोष्य, वर्षा क्या गीत गाय,  
नर या निर्गि नरकविषय<sup>६</sup> नर । ४९

१ उज्ज्यावांशः । २ उज्ज्यावांशः इत्युक्तं । ३ शौर्यं यः ।  
४ भाम्यः । ५ निर्गुप्तः । ६ नरकविषयः ।

सामना मगर<sup>१</sup> में करना,  
मृत्यु-मुख में था आ पडना,  
इसीसे मौन हुए रहते,  
शूल मन का मन में सहते,

वीर साहूल उन्हें थम था,  
आयु-मुल शल्य<sup>२</sup> से न कम था । ६०

नूर, निर्दय, निर्मम<sup>३</sup> ही हो,  
दया से सदय न तन-मन हो,  
न ऐसा था वह नर-भूषण,  
भग्न-भावुक था उसका मन ।

दया दीनों पर वरता था,  
कृपा के पुष्प वितरता था । ६६

१ युद्ध । २ काँटा । ३ निष्ठुर ।

निरवल्लभो पर करुणा-नल,  
गिराया करता वह अविरल\*,  
राज्य में अपने सुख-सर्गिता,  
प्रवातिन यथाशक्ति करता ।

शुभ्र उमकी आकाश थी,  
शान्ति की अनुपम बाछा\* थी । ७२

आर्युग पर बर था ऐसा,  
धना था जीवन भी पैसा,  
गन्ध\* ही एक परीक्षा थी,  
वरी गुरु की नीला थी ।

अन्य युग-धर्मोपेक्षा पथ प\*  
अमर होता था निरकर । ३'

सुना जिसने वह स्तब्ध रहा,

किसी ने शब्द न एक कहा ।

चित्र चित्रित-से लोग रहे,

भाव-लहरों में विसुध वहे,

ओज<sup>१</sup> से दीप्त हुए आनन,

तेज से चमक उठे तन-मन । १०८

सत्य अतिरक्षित<sup>२</sup> है अथवा,

कल्पना है रसमय किंवा<sup>३</sup> ?

कुसुम हैं कोई अम्बर के ?

स्वप्न हैं राज्याडवर<sup>४</sup> के ?

बह सका कोई कुछ न वहीं,

मौन थे श्रोतावृन्द वही । ११४

१ तेज ।

२ कल्पित, बढ़ाकर कहा हुआ ।

३ या तो ।

४ शक्ति प्रदर्शन ।

गर्भ से उँचा शीश किये,  
 गद्ग पर लक्ष्मि<sup>१</sup> हस्त दिये,  
 बहावर प्रखर शौर्य धारा,  
 मूर्ध्नि-मा नित या न्याग—

बीर मातूल प्रपुल्लित मा,  
 प्रभा म जगगा पर आन । १०

गा म ल्या पराविज दिा,  
 गुप्त ला, पापर तयनीयन,  
 गग मय गृ-गृहवर पर वा,  
 मोहवर वर। अर्जिभयन के।

कथाते रूप म पर वर  
 दिनादे मने मन गद । ११

१ शक्ति ।

### [ ३ ]

[ सली ने कादमद का बताया कि उसका प्रेमी उसका प्रतिदिन  
 पढ़ा दे। राजकुमारी का निश्चय पिता को मालूम हुआ। छद्मकी को  
 समझाने के बाद भायिकराज ने मादृज के माय ही उसका विवाह  
 कर देना तय किया। ]

‘निशा का शीशपूल’ प्यारा,  
 कान्त कमनीय<sup>१</sup> कलित न्यारा  
 स्थिता था ‘ग्रम्बर’<sup>२</sup> के सग में,  
 तरी<sup>३</sup> भ्रम गेकर पल भर में,

ले गई डमको स्वर्ण-फिरण,  
 न मन में लिया दया का कण । ६

१ चम से तापय । २ सुन्दर । ३ व्याकाश । ४ बीका ।



घीर वह उज्ज्वल तारों से,  
 मुमग्नित हीरक हारों से  
 उतारा क्योंकर रजनी ने ?  
 दिपाया या कैरविनी ने—

उमे लेकर मर के भीतर,  
 कुटिलता से उर को भरकर ? १२

गंगा की यह प्रकाश-गंगा,  
 फिर किमवा करती देगा  
 भ्लात मापुरी<sup>१</sup> तिगा की कर ?  
 रीत पर तिदंय उँगली भर

उरमम<sup>२</sup> मलो का करती,  
 बीत-गी आगा न भगती ? १८

जलज<sup>१</sup> की यह असंख्य आँखें,  
प्रतीक्षा इसकी क्यों राखे ?  
निठुरता इनको क्या भाती,  
प्रेम मे हैं या मदमाती ?

बिहँग क्यों गाने लगते हैं ?  
धौंस सुर में सुर भरते हैं ? २४

सुमन क्यों अपनी पराङ्गियों  
खोलकर, भावों की लड्डियाँ  
बिछाने लगते मन मन में ?  
सुरभि<sup>२</sup> यों भरते जन-जन में ।

स्वार्थ में कौन प्रलोभन है ?  
वही क्यों जन-मन-मोहन है ?” ३०

गोलकर वातायन<sup>१</sup> अपना,  
 देवती वैठी-सी मपना,  
 ध्यान मग्ना, भाषाहीना,  
 भाव-सहरो पर आसीना<sup>२</sup>,

नगीने-सी घर फान्ति नड  
 लिये, नृप-दुहिता<sup>३</sup> मान्मयी । ३

बज्र-कर सत्पद ॥ आय  
 ता-पुत्र अमर मपसाये,  
 गीत छग घुष, पिर गा बाली—  
 'मृन्मयी है पिररा भागी ?

विर्वा-मन्त्र विराज्य<sup>४</sup> का परम  
 पारि-द्वन्द्व<sup>५</sup> से मनु मरम— ४

भला है किसे भुला सकते,  
न उपमा जो जग में रखते,  
स्पर्श-मुख जो अनुपम देते  
भेद जो यों ही कह देते ।”

भग जल्लास-दास-मुख के,  
हुए सब सम्मुख मुख मुख के । ४८

“प्रतीक्षा किसकी है ऐसी ?  
चक्रेरी हिमकर'-प्रति जैसी,  
नेत्र किसके पथ में रींचते ?  
पलक किम स्मृति में यों मिचने ?

हुई अब तो पूरण आशा,  
शेष अब क्या है अभिलाषा ? ५४

“अतिथि तो घनकर अब आये,  
 सलोने प्रियतम मनभाये ।”  
 नग-स्वप्रोत्थित-सी<sup>१</sup> बाला,  
 गोलकर हग पञ्जमाला

सगरी की ओर हेर बोली—  
 ‘टठोली<sup>२</sup> यह कैसी मोली ?’<sup>३</sup> ६०

“मलय ही ता है अतिथि यो,  
 मोन ने आपर ये मुमो<sup>४</sup> ।  
 शौर्य की दुर्लभ गाथा<sup>५</sup>,  
 पाओ मो घनकर मा आये ।’

‘गणध है गुमे यहा । मरी,  
 मन्द कर न कर गिर देरी ।’<sup>६</sup> ६१

१ नग-माला २ टठोली ३ अतिथि ४ मुमो ५ गाथा ६ मन्द कर न कर गिर देरी ।  
 ७ मन्द कर न कर गिर देरी ।

सखी घर<sup>१</sup> उसकी बाहु-लता,  
मोद मे भरकर मृदु ममता,  
हुई सन्नद्ध<sup>२</sup> दिखाने को,  
घमे द्रुत-गति<sup>३</sup> ले जाने को,

किन्तु रुककर इस भाँति कहा—

“चात है दुष्कर एक महा, ७२

अभी तक पैसी ही सारी,  
ब्याठ की होतीं तैयारी,  
किन्तु क्या तुम विरोध करती ?  
प्रम प्रण का प्रबोध करती ?

न महिषी<sup>४</sup> को ही बतलाती ?

मुझे ही फिर क्यों बहकाती ?” ७८

‘सजनि ! म तुझे ठगूँगी क्यों ?  
 अनर<sup>१</sup> के पथ लगूँगी क्यों ?  
 किन्तु माँ के समक्ष कहना,  
 पोर लज्जा है सिर महना ।’

‘अन्त मे कहना ही होगा,  
 धर्म को गटना ही होगा ।’ ८१

‘जितू है मेरी बहतेरी  
 गयी तू बहसारी मरी,  
 गांठें जिन, और धर्म भी हैं,  
 मुखा-आर्पण-धर्म भी हैं,

यज्ञ म तेरे काम बना,  
 मौनही तुझ भार दरा ।’ ९

सली तब गई मोद भरके,  
 कहा रानी से जाकरके,  
 सुना नृप ने भी ज्यों-त्योंकर,  
 घोरतर चिन्तारत होकर,

सुता को फिर यों समझाया,  
 सिखावन देकर मनभाया—९६

“भयद्वर होगा इसका फल,  
 मचेगी भीषणतम हलचल ।”  
 सलज्जा, नम्र मुरी कन्या,  
 सुशीला, सुमुरी, सौजन्या,

खोदती-सी नख से धरणी,  
 मौन हो बैठी मनहरणी । १०



आँख में भूँरि भरा था नल,  
 रुद्ध<sup>१</sup> वाणी थी, माँ निल<sup>२</sup>,  
 प्रसन्न थी तैमि<sup>३</sup> किन्तु मुग्ध पर,  
 और जन्ता थी ओंछा पर

उस पद नृप ने पहचाना,  
 मोत का पूर्ण मर्म<sup>४</sup> जाना । १०८

निकल अन्तपुर मे मत्वर,  
भूप आये यों उस यल पर,  
जहाँ गमनोद्यत<sup>१</sup> अतिथि प्रवर,  
हुण थे पक्कित सनकर,

सुनाकर धृत्त पुन घोरो,  
धर्म-मकट के पट खोले । १२०

रत्न मादल स्तब्ध क्षणभर,  
भरे मस्तक पर श्रम जीवर<sup>२</sup>,  
यादकर जयदात्री काली,  
नष्टि योद्धाओं पर डाली,

परामम प्रोज्जवल, प्राणोन्मुख<sup>३</sup>,  
दर्प-दर्पण<sup>४</sup> थे जिनके मुख । १२६

१ जाने को तैयार । २ पसीने का घूँद । ३ उत्साह में । ४ गध के प्रतिविम्ब ।

हुआ परितोष, मिली आशा,  
 हृदय में जन्मी अभिलाषा,  
 कहा नृप से, "हूँ मैं प्रस्तुत,  
 अर्थ मे रहित, धर्म-संयुत,

रक्त से चाहे घरा रेंगे,  
 मृत्यु आ उर से क्यों न लगे ? १३२

तियाँदेंगे कर्तव्य अटल,  
 प्रतिष्ठा पालेंगे अविच्छन्न<sup>१</sup>,  
 आर गटिये अराजक निर्भय,  
 धर्म पथ होना महानमय,"

भूप को द आशा-संकेत<sup>२</sup>,  
 विदा होकर बल दिया मदन । १३८

रसमयी भरे मधुर चितवन,  
 लिये मृदु मोती-से जल-कण,  
 बिछी थी दो आँखें पथ-पर,  
 भरोखे से मोत्सुक, सुन्दर ।

उधर देखा, दृग चार हुए,  
 प्रेम पर मन बलिहार हुए । १४४

---

## [ ४ ]

[ सादृज घोर राजकुमारी का विनाश हा गया । उसी समय गुप्तचर ने एघर दी, मंडोर की मेना युद्ध क क्षिण सग रहा है । राजा घरे और अपनी सग सादृज का देनी चाहि, पर उस घोर ने न ली । अपने थोडे से वीरों के साथ हा डोला ले घना । ]

राम ने पायी थी सीता ।  
जग ध्रुव<sup>१</sup> है गौरव-गीता ।  
ममय यद्यपि अनन्त बीता,  
हुआ फिर भी क्या घट रीता ?

अमर है, वह अविनश्वर है,  
कीर्ति का वह अजस्र<sup>२</sup> स्वर है । ६

१ विश्व विस्थात ।    २ सार्वज्ञ ।    ३ निरन्तर ।

नृप-मुता ने त्यो प्रिय पाया,  
हेम' को मणि ने अपनाया ।  
कीर्ति-कल-कुञ्ज हुई काया,  
प्रेम की मजु हुई माया ।

आम से मिली नवल बेली<sup>१</sup>,  
चञ्चला जलधर<sup>२</sup> में खेली । १७

व्याह के मन्त्रोच्चारों में,  
मिलन के मृदु उद्गारों में,  
मनोरथ<sup>३</sup> की यह हरियाली,  
माध<sup>४</sup> की यह सुरभित टाली,

लहलहा उठी एक क्षण में ।

हृदय के मिश्रित उपवन में । १८

१ मोना । २ क्षता । ३ यादव । ४ इच्छाओं । ५ कामना ।

भौवरों के ये ये फेरे,  
 या कि प्राचीरो<sup>१</sup> के घरे ?  
 प्रेम-कारा<sup>२</sup> में बन्दी बन,  
 पड़े दोनों के प्रेमी मन,

अर्चित, हर्षित, पुलकित-से,  
 विमोहित, स्वप्नोन्मादित-से । २४

प्रजा राजा में, स्वजनो में,  
 स्नेह-परिपूर्ण परिजनों<sup>३</sup> में,  
 हर्ष की वासन्तिक<sup>४</sup> सुपमा<sup>५</sup>,  
 पा रही थी अपूर्व उपमा ।

उमगित थे आनन-लौचन,  
 तरंगित थे समस्त तन-मन । ३०

१ घोषारों ।    २ बन्दीगृह ।    ३ अनुचरों ।    ४ बसन्ती ।  
 ५ सौंदर्य ।

मागलिक बाजों की धुन में,  
अलकारों की रुनमुन में,  
तरुणियों के कल गीतों में,  
हुलाचारों में, रीतों में,

भर रहा था विनोद-निर्माँर,  
प्रवाहित था प्राणों से घर । ३६

हुई थी पूरण चिर-बाझा,  
फली-फूली थी आकाशा ।  
षडू का बिहसित चन्द्रचटन,  
समालोकिताकर<sup>१</sup> अवगुठन<sup>२</sup>,

प्रतिच्छिन्नि<sup>३</sup> भर-भर जीवन में,  
मोद मढता था फण फण में । ४२



मिन्तु उम आनन्दोत्सव में,  
 राग-रगा के उद्भव में,  
 मौख्य के मुखरित<sup>१</sup> वानन में,  
 मोद-मन्त्र के आँगन में,

क्षितिज<sup>२</sup> के छोरों तरु छापी,  
 घटा चिन्ता की घिर आयी । ४८

प्रणिधि<sup>१</sup> लोएर वहाँ आया  
 घृत्त घह विषम एर लाया ।  
 “होरही यी जो आशका,  
 बजेगा क्या रण का डरा ?”

मोच में पड थो मोहिलपति,  
 होरहे थे विमृढ-हतमति । ५४

<sup>१</sup> गुजित गब्दमय । <sup>२</sup> वह घरा जहाँ पृथ्वी और आकाश मिल  
 अनात होते हैं । <sup>३</sup> गुप्तर ।

उपस्थित हो सम्मुख तत्क्षण,  
प्रणत चर ने यों किया कथन—  
'चन्द्र छिप सका न अञ्चल मे,  
गया सवान् वहाँ पल मे,

अत मज्जित मडोर-अनी,  
चली है रण के लिए तनी । ६०

सर्प सम पद-मर्दित, रोषित,  
दिशाओं को करते घोंपित',  
तिरस्कृत, अपमानित, वशित',  
सडे राठौर युद्ध के त्तित,

रुद्ध<sup>१</sup>पथ पूगल आ करके,  
'तोभ को ईर्ष्या मे भरके ।" ६६

दीर्घ निश्वाम ण्ड लेकर,  
 मौन रह गये भूप दण्डभर ।  
 गुग्गुली को फिर संचित कर,  
 कहा—“रक्षक है विश्वम्भर—

छुद्र वृण है प्रयास जन पा,  
 छुद्र उस महाप्रभञ्जन<sup>१</sup> का । ७२

महार्णव<sup>२</sup> है वह, जगत्शीकर<sup>३</sup>  
 परे उसकी समता क्योंकर ?  
 संपटित<sup>४</sup> होगा सब वैसा,  
 बसे होगा चाञ्छित जैसा ।”

हृदय को यों करके संयत,  
 नृपति फिर हुए कार्य में रत । ७८

१ अण्ड, घाँघी ।    २ महासागर ।    ३ घटि, छोटी घूँघ ।  
 ४ या मिलेगा, होकर रहेगा ।

सजग सेनप' को शीघ्र किया,  
 और या उसे निदेश' दिया—  
 "कि प्रस्तुत करो पूर्ण सेना,  
 यज्ञ से रण-तरणी सेना,

धर धधू सकुशल पहुँचाना,  
 निभाना वीरोचित याना ।" ८४

कहा वीरों ने—'जय जय जय,  
 सामने हो यदि मृत्युञ्जय',  
 उसे भी हम ललकारेंगे,  
 युद्ध के लिये प्रचारेगे ।

धजायेगे तोहा ऐसा ।

कि अश्रुत हो जग में जैसा । ९०

प्राण का है जब तक स्पन्दन<sup>१</sup>,  
 रक्त-वाहित<sup>२</sup> है जब तक ता,  
 चर-चरू का, आगत-जन का,  
 बाल भी होगा क्या चाँका,

उठयेगा जो नष्टि उबर,  
 रहेगा वही और खोजर ।” ९६

भूप हों जब तक स्वस्थ-सुचित<sup>३</sup>,  
 हुआ त्यों आपर समुपस्थित,  
 स्वय मादृल वीर विश्रुत,  
 अमित आलोन ओर<sup>४</sup>, बलपुन

कहा—“हो अविनय बड़ी क्षमा ।

विश्व मे है न कहीं उपमा । १०२

१ धदकन ।

२ खून के प्रवाह से युक्त ।

३ प्रसन्न मन ।

४ तेजस्वी ।

अलौकिक भाटी-वीरों की,  
ठठीले इन रणधीरो की ।  
जल्प है कभी न अपना बल,  
शक्ति<sup>१</sup> होगा प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला ।

आप हों मर न चिन्तातुर,  
लज चुका हूँ रण-रोप प्रचुर<sup>२</sup> । १०८

युद्ध होगा भी क्या निश्चय ?  
और होगा ही तो क्या भय ?  
वीरवर मरकर ही जीते,  
नीर शोणित<sup>३</sup> ही का पीते ।

स्वर्ग है उनको रण प्यारा,  
पुण्य-पावन है अग्नि-पारा<sup>४</sup> ।” ११४

भूप ने फिर फिर समझाया,  
 ध्यान में पर शुद्ध कब आया ?  
 चिदा धी शेष अभी लेना,  
 यही ली, न ली किन्तु सेना ।

किस तरह नरपति मौन रहे ?  
 विवशता उनकी कौन कहे ? १२०

हृदय से बाहर छल छल छल,  
 गिराया महिषी ने दृग-जल<sup>१</sup> ।  
 बिम्ब<sup>२</sup> अपनी वर आत्मा का,  
 कुशल कौशल विश्वात्मा का,

यर्ण कुन्दन का जगमग सा,  
 हास्य मृदु फूलों के रँग-सा, १२६

हुए सब जिसमे एकत्रित,  
रूप की रेखा-सी चित्रित—  
स्वयं थी जो सुचारु लीला',  
सुशीला दुहिता' छबिशीला,

छोड़ थी महल वही जाती,  
क्यों न फटती माँ की छाती ? १३२

यिदा दी लोकिक-रीतों ने,  
और, उन मगल-गीतों ने  
उसे, आनंद-जल वर्षाकर,  
गई पर करुणा ऐसी भर,

न आँखों ने जो धो पाई,  
न स्मृति-मन्दिर से खो पाई । १३८



[ ५ ]

[महोर-सेना को माग रोक रखकर सादूल ने अपने वीरों को तैयार रहने के लिए कहा । वीरों के हुंकार भरन पर आप अपनी मधवधू से बिदा लेने गया । कोदमने ने हँसकर पति को बिदा दी और अपने रक्त से उसका अभिषेक कर दिया ।]

पूर्व अनुमान यथार्थ हुआ,  
सुना था जो, सत्र सार्थ' हुआ ।  
रोककर पथ महोर-अनी,  
गवड़ी थी प्रस्तुत व्यूह घनी ।

प्रथम निन अस्रो को तोला,  
पुन सादूल सिंह बोला— ६

‘योरवर’ आज परीक्षा है,  
तुम्हें देना रण भिन्ना है,  
शौर्य की यही सुनिश्चा है,  
दिना से यही प्रतीक्षा है—

कि हो अरि रङ्ग प्रस्त सम्मुख,  
प्रहारों<sup>१</sup> से मिलता हो मुख । १७

मर भी तो हो शर-शय्या<sup>२</sup>,  
गले से लिपट रही हो ज्या<sup>३</sup> ।  
स्वर्ग का खुला पड़ा हो पथ,  
मरामम का बढ़ता हो रथ,

रक्त हो अपना गङ्गाजल,  
बही घरदान, बही सचल<sup>४</sup> । १८

१ चोटों । २ बाणों की सेन । ३ धनुष की झरो । ४ आधार ।

जय तिलक करे स्वयं काली,  
 रक्त से भरकर निज थाली ।  
 कपाली<sup>१</sup> का ताण्ड्य-नर्तन<sup>२</sup>,  
 शत्रु का करे कोप-कर्त्तन ।

रोष की घघक उठे ज्वाला,  
 भस्म हो उसमें अरि-माला ।” २४

बधू का ले सतर्क डोला,  
 कहा वीरों ने, “बभोला ।”  
 हिली धरणी, पहाड़ डोला,  
 भगे कायर ले-ले चोला<sup>३</sup>,

रहे रण-राते वीर लड़े,  
 युद्ध-हित निज निज ठौर अड़े । ३०

उधर बढकर मडोर-नृपति,  
सैन्य को देते थे अनुमति ।  
दीप्त ज्वला था मुख-भङ्गल,  
तेज का आकर एक प्रयत्न ।

वत्त विस्तीर्ण, सुदृढ़ अवयव,  
जलद-भीर<sup>१</sup> उच्च था रव । ३६

दूत जो सम्मुख वहाँ रहा,  
बुला उससे इस भीति कहा—  
“शत्रु से जाकर यों कहना,  
यदि<sup>२</sup> मैं उसको यों दहना—

अश<sup>३</sup> हरि<sup>४</sup> का तो हरण किया,  
वार<sup>५</sup> पर उसका नहीं लिया । ४२

१ बाहुल को तरह भारी । २ आग । ३ माग । ४ सिद्ध ।  
५ घोट ।

गटा है सो वह धैर्य च्युत,  
विकपित, क्रोधित, रण-प्रस्तुत ।  
सजग शस्त्रास्त्र मुसज्जित हो,  
न भय-नर में विनिमज्जित हो,

दिराओ रण कौशल, जिसपर  
भरोसा है तुमको नरवर । ४८

प्रदर्शित किये बिना विक्रम,  
शत्रु को किये बिना अक्षम,<sup>१</sup>  
न होगा अब घर को जाना,  
छोड़कर सम्प्रति घर बाना,<sup>२</sup>

मारना या मरना होगा,  
रक्त-भर यो तिरना होगा ।” ५४

१ समताग्रहित । २ दूध का वेश ।

अवण करके मादूल हँसा,  
कमर को भली प्रकार कसा ।  
‘‘यही आशा थी,’’ फिर बोला,  
‘‘चलो, मचने दो रण रोला’ ।’’

दूत को यो कह बिदा दिया,  
कठिन कर अपना हृदय लिया । ६०

गया तब डाला के सम्मुख,  
सुदृढ भावों से हो उन्मुख<sup>१</sup> ।  
विधु मुखी<sup>२</sup> का मुख शशि लखकर,  
कहा उसको सम्बोधन कर—

‘‘प्रेममयि, प्रिये, प्राण प्यारी,  
न कहने का हूँ अधिकारी । ६६

१ युद्ध की दृष्टि । २ मुख उठाये । ३ चन्द्रमुखी ।

प्रेम का मिला कहाँ अवसर ?  
 भ्रमर कब भेटा इन्दीवर<sup>१</sup> ?  
 चन्द्र का हुआ कहाँ चुम्बन ?  
 हुआ कब घन-चपलालिंगन<sup>२</sup> ?

कभी यदि हो वह मधुर-मिलन,  
 मार्य होंगे ये सम्बोधन । ७२

अभी तो ऐ क्षत्रिय-बाले !  
 रक्त के भरने हैं नाले ।  
 रण-विदा देना हर्षित-मन,  
 मलिन मत करना चन्द्र वदन<sup>३</sup>,

गोलकर अभिमन्त्रित<sup>४</sup> बधन,  
 बाँध दो हँसकर रण कंकण ।” ७८

१ कमल । २ बादल विजली की भेट । ३ मुख चन्द्र ।  
 ४ मन्त्रों से पवित्र किया हुआ ।

शिला<sup>१</sup>-सी दीपक की जलकर,  
 प्रभा से होकर सज्ज्वलतर,  
 सलज्जा लज्जा को ढककर,  
 विहँसकर घोली, "प्राणेश्वर !

हमारे चिरजीवन-सहचर !  
 साधना<sup>२</sup> के छे मेरे घर<sup>३</sup> । ८४

अनुचरी<sup>४</sup> को हूँ वेद-वचन,  
 आपके सारे अनुशासन<sup>५</sup> ।  
 इसी दृढ़ता पर यह तन-मन,  
 बारम्बार प्रभु को किया वरण ।

आर्य ! अक्षुण्ण<sup>६</sup> रहे सारा,  
 यश का चिर-गौरव प्यारा । ९०

१ यत्ती । २ तपस्या । ३ घरदान । ४ दासी । ५ आज्ञा ।  
 ६ अम्वयद ।



आप जाकर हों रण मे रत'  
 जानती हूँ मैं अपना व्रत'।  
 अस्त्र-सञ्चालन, रण कौशल,  
 आपका जग विश्रुत भुजबल,

देखने की ये शत्रुञ्जय !  
 लालसा है मुझको अतिशय । ९६

पराजित कर रिपु शत्रुदमन !  
 लौट आयेंगे हर्षित मन,  
 दिखाऊँगी निज 'अन्तरतम',  
 मोलफर, सञ्चित प्रेम-परम ।

करूँगी पूरी चिरवाढा,  
 न रहने दूँगी आकाङ्क्षा । १००

और यदि कहीं अनिष्ट हुआ,  
न मम सुख विधि को इष्ट हुआ,  
विरह तो भी क्या जीवनधन !  
मह सकेगा यह कोमल तन ?

मिलेंगे वहाँ खोलकर मन,  
न होगा फिर विच्छिन्न<sup>१</sup> मिलन ।” १०८

छेदकर अप्रता कोमल तन,  
निफाले कई रक्त के क्षण,  
कृशागी<sup>२</sup> तरुणी वाला ने,  
रूप-रत्नों की शाला ने,

किया अभिषेक, विदा दी यों,  
कान्ति-सङ्कलित<sup>३</sup> उषा हो ज्यों । ११४

गये जब प्रियतम शौर्यसदन<sup>१</sup>,  
 मुग्ध, अवसन्न<sup>२</sup>, प्रफुल्लवदन,  
 जहाँ थी सजी रण्नी सेना,  
 जहाँ रिपु मे था रण लेना,

हुई उस ओर एकटक बन<sup>३</sup>  
 पोंछकर आँख, थामकर मन । १२०

१ पौरता के घर । २ दुखी, उदास । ३ खो ।

## [ ६ ]

[ दोनों सेनाओं में घमासान मचा, फिर सादूल और अटकमल का भीषण इन्धुयुद्ध हुआ । अन्त में आहत होकर दोनों एक साथ रणभूमि में गिर पड़े । अटकमल तो कुछ देर में सचेत होगया, पर वार सादूल फिर कभी न उठ सका । ]

उस समय था मध्याह्न प्रहर,  
भानु लोहित<sup>१</sup> उद्गीत प्रसर ।  
रश्मि<sup>२</sup> के छोड़ रहा था शर,  
या कि वे थे असंख्य विषघर ।

चराचर को डसने आते,  
वह्नि वसुधा पर बरसाते । ६

देखती हई परस्पर यो,  
 खडी थीं दो मेनाये क्यों ?  
 कराली कृत्या<sup>१</sup>-सी प्रस्तुत,  
 नम्र करवाल<sup>२</sup>, परिघ<sup>३</sup>, शरयुत ।

उन्हें यी आशा की देरी,  
 कि बज उठती यस रण भेरी । १२

मिला सकेत, तडित<sup>४</sup> चमकी,  
 यमक से वसुधा तक धमकी ।  
 गिञ्च गई तीखी तलघारे,  
 भमक कर वहीं रक्त-गारे ।

शीश घट कटे, हुण निपतित,  
 मरे आर्यों मे आर्य अमित । १८

१ थंडा । २ तलवार । ३ शूल । ४ बिजली ।

विशिय' बरसे ज्यों भल्ली लगी,  
धीरता मोई हुई जगी ।  
दुधारे चले, चलीं बग्यो,  
कटारें हुई पाग तिरछी ।

चतुर्विध 'मार-मार' सुनकर,  
कण्ठ उठते ये गिर गिरकर । २४

पवन भ चारो पक्ष हुये,  
युद्ध के रङ्ग अनेक हुये ।  
मार 'क्षप-क्षप' तलवारो की,  
चोट दुर्धर्ष' प्रहारो को,

कर्ण-रन्ध्रो' को भरती थी,  
भीत वीरो को करती थी । ३०

न रण चढी<sup>१</sup> पर तुष्ट हुई,  
 आन्ति हृदयों से नहीं छुई ।  
 वेग-विद्युत से हो खंडित,  
 अंग करते थे भू मंडित ।

चूर्ण होते थे हय-नाथ<sup>२</sup> रथ,  
 रुद्ध करते थे शव गिरि<sup>३</sup> पथ । ३६

दूर परिणाम देख रण का,  
 अन्त आच्छन्न देख प्रण का,  
 शत्रु दोनों ही थे कातर,  
 कि कब वे करें द्वन्द-सगर<sup>४</sup> ?

गया जब उनसे नहीं रहा,  
 उभय पक्षों ने यही कहा— ४२

१ मुद की देवी । २ हाथी । ३ मुदों के पहाड़ । ४ द्वन्द्वमुद ।

“रुदन पुरित हो क्यों घर-घर ?  
विलापो से क्यों भरे नगर ?  
परस्पर द्वन्द-युद्ध ठन के,  
हौसले कटे क्यों न मन के ?

कटे क्यों सैन्य, नष्ट हो बल ?  
जले क्यों ज्वाला से हृत्तल ?” ४८

रुफ गये हाथ, थम गया रण,  
थन गये सैनिक दर्शकगण ।  
शौर्य प्रतिमूर्ति वीर दो बढ,  
चले निज निज घोडेप र चढ ।

भीष्म भृगुनाथ<sup>१</sup> तुल्य सत्वर,  
हुए सम्मुख दो योद्धावर । ५४



व्यग्य<sup>१</sup> नेले मटोर-नृपति—  
 “आइये बढकर पूगलपति !  
 व्यक्तकर जग मे रणकौशल,  
 कीजिये दशित निज भुज रल ।

किया दुप्कर<sup>२</sup> साहम जैसा,  
 समर भी होगा अथ वैसा ।” २०

महज स्मित<sup>३</sup> ओठो पर लाकर,  
 उठा पूगलपति ने सत्वर—  
 “धर्म ही तो है क्षत्रिय का,  
 धरे स्वागत रण मे प्रिय ना ।

‘ सदा प्रसुत हूँ मैं सम्मुख  
 न रण से हूँ मैं कभी विमुख ।” २१

‘धर्म का तो अब बोव हुआ,  
न उसका पहले शोध हुआ ?  
शौर्ययुत, धर्मोचित, अनुपम,  
यही है वीरों का विग्रह ?

वन्य सङ्घर्ष ! वन्य प्रतिभा !  
वीरता सी यह वन्य प्रभा !” ७०

मूठ पर हाथ गड़गड़ी धर,  
गोंप में लोचन रक्तिम<sup>१</sup> कर,  
फटा मादलसिंह ने तब—  
“न अवसर है शिक्का का अब

उठा लो अस्त्र-शस्त्र फर में,  
आ हटो सम्मुख मगर में ।” ७१

“नही देखा है जिसका मुख,  
 शून्य है जग जिसके सम्मुख,  
 सान्त्वना-वाक्य उसे कहकर,  
 बिदा तो ले आओ जाकर ।

मिलेगा फिर न कभी अवसर,  
 वीर ! है अन्तिम यही प्रहर ।” ८४

“न भिम से टल सकता है रण,  
 रोलकर फेंको रण-कंकण,  
 विमुख हो पकड़ो अपना पथ,  
 अघसर<sup>१</sup> करो दैन्य का रथ ।

११४ अन्यथा कुशल न निज जानों,  
 शीश पर मृत्यु खड़ी मानों । ९०

क्षितिज तक फैला नीलाश्रल<sup>१</sup>,  
 और यह विस्तृत अवनीतल,  
 सूर्य की यह स्वर्णिम<sup>२</sup> छाया,  
 विश्वपति की मोहक माया ।

देखकर सफल परो लोचन,  
 न इनका होगा फिर दर्शन ।” ९६

प्रबल हो उठी रोप-ज्वाला,  
 उभय वीरो ने घृत ढाला ।  
 खिँच गई तेरा, उठे भाले,  
 शौर्य के उमड़ चले नाले,

वीरता मे नोनो थे सम,  
 हस्तलाघव<sup>३</sup> था अद्भुततम । १००

१ नीलाकाश । २ सुनहला । ३ हाथ की पुर्वी ।

वाम-दक्षिण<sup>१</sup> दिशि स बढकर,  
 वार करते थे क्षण क्षण पर ।  
 हो उठे थे जर्जर अवयव<sup>२</sup>,  
 न त्रिचलित हुये वीर-मुद्गव ।

शिथिल उनका न रणोत्सव था,  
 न जी में भय का उद्भव था । १०८

धूल पर टूटी तलवार,  
 हुई बाणों की बौछार ।  
 लिए भाले सम्मुख डटकर,  
 निगार्डे पीठ न पर हटकर ।

विलोका जिसने 'धन्य' कहा—  
 लोमहर्षण<sup>४</sup> था युद्ध महा । ११४

१ बाया दाहिना । २ अंग । ३ वीरभट्ट । ४ रोसा का खदा  
 कर देनेवाला ।

प्रहारों से था काम उन्हे,  
रच भी न था विराम उन्हे ।  
चूर्ण हो गिरे वज्र आयुध,<sup>१</sup>  
हो उठे स्तब्ध-चकित रण बुध<sup>२</sup> ।

न सङ्कित रण-प्रयास हुआ,  
न बल पौरुष का हास हुआ । १००

घोरतर और हो उठा रण,  
मृश्य था वह कैसा भीषण ।  
परस्पर दो मृगेन्द्र<sup>३</sup> भिडकर,  
टङ्करे लेते घट-भटकर ।

पराजय-जय के किन्तु कहीं,  
प्रकट होते थे चिह्न नहीं । १०६

१ इधियार । २ युद्ध कुशल । ३ सिंह ।

रक्त से लोहित रर अम्बक',  
 लक्ष्य रर बैरी का मस्तक,  
 खड्ग पृगलपति ने निधडर,  
 चलाई तीक्ष्ण और घातक ।

मची रिपु मेता मे हलचल,  
 एक छाया आतक प्रबल । १३०

चतुर गठौर धीर ने पर,  
 उसे यों रोका बढ सत्वर ।  
 और थोडा-मा पा अवसर,  
 ताक कर किया बार मिर पर ।

माथ ही साथ प्रहार हुए,  
 अस्त्र दोनो के पार हुये । १३८

शिरसर सम गिरि के यन्त्राहत<sup>१</sup>,  
गिरे दोनो ही क्षत विक्षत<sup>२</sup> ।  
प्रकाशित था जिनमे अम्बर,  
गिरे वे लो तारे भूपर ।

रही सेना चित्राङ्कित-सी<sup>३</sup>,  
ज्ञानहत<sup>४</sup>, मृद, सशक्ति-सी । १४४

वीर राठौरराज विभ्रुत,  
हुये थे केवल मूर्च्छायुत,  
अत वे उठ बैठे सत्वर,  
नही सादूल उठ सत्ता पर ।

वीर चिर-निद्रा में सोया ।  
—दिशाये रोई, जग रोया । १५०

१ घत्र में मारा हुआ । २ दुरी तरई घायल । ३ तमघोर में  
खिची । ४ विवेक-रहित ।



ब्याह का करुण न था लुला,  
 न मेहदी का रँग अभी धुला ।  
 भरा अरमानों स था मन,  
 न हँसने पाया किन्तु सुमन ।

हास से प्रथम विनाश हुआ,  
 ऋता का वह ग्राम हुआ । १५६



[ ७ ]

[नववधू डोले से उतर पड़ी। पति का शव गोद में लिया और धिता पर जा बैठी, पर उलने से पूव अपना एक हाथ काटकर अपने बूदे रयमुर के लिंग ओर दूसरा एव मैत्रिक से कटवाकर चारण के लिंग भेजे। इस तरह वह वीरबाला सती होगई।]

पोछ किवा मुहाग-टीका,  
छीन मगलपट अवनी का,  
कुसुम का या कर गग हरण,  
रक्त-रजित था साध्य-गगन ?

छिड़कने को शोणित-रोली,  
थाल में अबर के घोली ? ६

दिशाएँ सूनी, मौन विजन,  
 भरा था सब मे सूनापन ।  
 क्षितिज का सूना-सा अञ्चल,  
 पड़ा था विशाल किन्तु अविचल ।

मुख-श्री खोकर सैनिकाण,  
 रखे थे लेकर सूनापन । १२

जय-श्री मे परिपूर्ण हुआ,  
 गर्व-नगरिमा मे चूर्ण हुआ,  
 रणस्थल से रिपु विमुक्त हुआ,  
 शेष मघ मे दुरा प्रमुक्त हुआ ।

निहत-हत मे मघ मौन रहे,  
 वेदना मन की कौन कहे ? १८

“वर-वधू लखने को आकुल,  
 स्रोत-मा बढ नर-नारी-कुल,  
 मिलेगा अत्रिश्रान्त आकर,  
 हृदय को उत्सुकता से भर ।

हर्षमय वह मगल-स्वागत,  
 किस तरह होगा हाय ! विगत ? २४

हुआ मन्ना से अभिसिंचित,  
 न सूखा है ललाट<sup>१</sup> किंचित ।  
 वधू की वह सुहाग-रेखा,  
 न जिसने दृष्टा दिन देखा,

क्रूरता के हाथो ने यो,  
 पोछ दी स्वप्न-लीक-सी क्यों ? ३०

अरी, ओ री अरुण मध्या ।  
 ला रही तू जो चिरवद्या<sup>१</sup>  
 निशा, विश्रान्तिमयी<sup>२</sup> काली  
 न चीते, भरे न फिर लाली

निराली लाकर रही उपा ?  
 न देखे निज दुर्भाग्य स्तुपा<sup>३</sup> ।” ३६

सभी ये जय यो चिन्तारत,  
 मूढ कर्त्तव्य, दशा विन्मृत,  
 रण-स्थल मे शोषित-वारा,  
 मृद दर्शाती थी नारा ।

चतुर्दिव भीषण भयशीला,  
 हो रही थी पिशाच-लीला<sup>४</sup> । ४७

मूढ-मुण्डों का लस सन्दन,  
 घायलों का मकरुण क्रन्दन,  
 मिहर उठते ये दर्जकगर ।  
 देखकर वह जोखित-वर्षण,

दिशाओं का रुपित था मन,  
 शोक-विह्वल था नील गान्त । ४८

धीध मे धुमे हुये रवि-सा,  
 अकथ, अश्रुत, प्रमुग्न छवि-सा,  
 शौर्य की प्रतिमा-सा<sup>१</sup> सुन्दर,  
 निहत आहत मादूल प्रवर,

पडा था शान्त, मोन, निचल,  
 ओढ चिर-निद्रा का अम्रल । ४९

अनायुत<sup>१</sup> करके चन्द्रानन,  
 उलटकर नूतन अवगुठन<sup>२</sup>,  
 भगकर सकरुण नीरवता,  
 पालकी मे माधवी-लता,

विज्जु-रेखा<sup>३</sup> सी ओजमयी<sup>४</sup>,  
 उतर कर भूपर रखी हुई । ६०

उम<sup>५</sup> ले भाव एक मुरपर,  
 अटल हृदय ला ओठों पर,  
 टगों में भरकर रख ज्वाला,  
 दीप्त थी दुर्गा-सी बाला ।

उमे लग्न सध्या म्लान हुई ।  
 किरण तम-लीन समान हुई । ६६

१ मुला । २ धूँषट । ३ विनशा की लक्षार । ४ तेजस्विनी ।  
 ५ तीक्ष्ण । ६ चंदो ।

प्रसर सौंदर्य निहार प्रचुर,  
 बुझे जलकर घीरो के उर ।  
 उदासी में छाये तन-मन,  
 घिरे करुणा के काले घन ।

परस्पर यों विचार विनिमय,  
 लगे करने सब लोग सभय । ५२

“करेगा निठुर दैव अज क्या ?  
 प्रलय पर वज्र पड़ेगा या ?  
 हिमालय-सी दृढ़ता का क्षन,  
 लिये है क्या मलिलासावन ?

छिपाये भीषण आन्दोलन,  
 तो रहा दोलित<sup>१</sup> उमका मन ? ५८

१ धौंसुधा की वाढ़ । २ हलचल । ३ फँसत ।



अटलता के उर में चंचल,  
 छिपा है क्या विस्फोट तरल ?  
 निहित है क्या उस वाला की,  
 भग्न यिखरी मणिमाला की,

मौन में हाहाकार, रुदन  
 ओज में विपुल करुण-सून्दन ?” ८४

लक्ष्यनर उनकी मनोव्यथा,  
 लान की परखे दूर प्रथा,  
 वीर-ललना<sup>१</sup> ने गोला मुरा,  
 हई अति दृढ़ता से अनुमुरा—

“चूड़ियों की रक्षा के हित,  
 बहाया मरने रक्त अमित । ९०

प्राप्तकर ऐसे स्नेहीजन,  
 धन्युओ ! धन्य हुआ था तन ।  
 यद्य थी किन्तु भाग्य-रेखा,  
 उसे कब किसने हा ! देखा ?

विधाता को जो दृष्ट रही,  
 हुई लिपि उसकी आज सही । ९६

.

श्रणी हूँ, और गूँगी मैं,  
 स्नेह-आभार सद्गुणी मैं ।  
 चित्ता का कर यदि आयोजन<sup>१</sup>,  
 मुझे दे अन्तिम आश्वासन<sup>२</sup> ।

कर सगूँ पालन जिससे प्रत,  
 मती का रहे सुरक्षित सत् ।" १०८

शीघ्र सम्पूर्ण निदेश' हुआ,  
 अश्रुजलमय सब देश हुआ।  
 चिता चन्दन की एक बनी,  
 गन्ध-द्रव्यो<sup>१</sup> से खूब सनी।

यही थी क्या शय्या कोमल ।  
 बिधाता विरचित स्निग्ध बबल ॥१०८

गोद में ले प्रियतम का शव,  
 हुई आसीन चिता पर तब,  
 भाग्य-व्यचित वह नववाला,  
 खोल कुचित<sup>२</sup> कुन्तल-माला<sup>३</sup>,

नेत्र था मगलमय अनुपम,  
 भग्न भावों में था सयन । ११४

सढे ये धिरकर सैनिकगण,  
उन्हे यों करके संबोधन,  
सती ने कहा कि, "वन्धुप्रवर !  
फाटकर देती हूँ मैं कर ।

श्वसुर को मरे यह देना,  
निवेदन भी यों कह देना—१२०

'सुत बधू उनकी थी ऐसी,  
पुत्र की प्रतिभा थी जैसी ।  
न मरने से वह रच डरी,  
परीक्षा में पूरी उत्तरी ।

ग्रन्थिवधन' था खूब सुदृढ,  
इसीमे सकी स्वर्ग में चढ । १२६

एक अभिलाषा को लेकर,  
 कि उसको मिल न सका अवसर  
 ग्वसुर-पद पूजा का किञ्चित,  
 गई वह सेवा में वञ्चित' ।

न दर्शन तक हा ! कर पाई,  
 न सिर चरणों पर धर पाई । १३२

उसीका स्मारक<sup>१</sup> सलिलाशय<sup>३</sup>,  
 एक ननवाना शोभामय ।  
 गौर्य का कीर्ति-कुञ्ज भरना,  
 मत्स्य भी यहाँ गडा करना ।

पथ दूरस्थ छोड़ विस्मित,  
 जहाँ 'प्राये पथचारी' नित । १३८

सुनें, रोयें फिर आह भरें ।  
उच्छ्वसित शोक सिन्धु उतरे ।  
कहें—सोते हैं दो प्रेमी,  
यहाँ पर गौर्य नेम-नेमी ।

चलें तब कर अश्रु सिचन,  
अमर हो प्रणयतीर्थ पावन ।” १४४

कहा फिर एक ओर मुड़कर—  
“काट लो भाई ! यह भी कर,  
इसे ले चारण’ को देना,  
और यों उससे कह देना—

‘कि ऐसी थी क्षत्रिय-वाला  
कुलव्रत उसने यों पाला । १५०



रुष्ट हों गिरा' महारानी,  
मृक्पत<sup>२</sup> कुण्ठित हो पाणी,  
न सूझे भाव, हृदय हत हो,  
फल्यना आहत विस्मृत हो,

इमे स्मृति-मन्दिर से लेफर,  
सान प्रतिभा पर तोना घर । १६८

न शब्दों को स्वर धूता हो,  
न भाषा में बलबूता हो,  
फाव्य-बीणा हो जय नीरव,  
मौन हो कीर्ति कुज नलरव<sup>३</sup>,

रक्त का स्पन्दन शिथिलित हो,  
हृदय का गोग्व विगलित<sup>४</sup> हो, १७४

१ स्तरस्वती । २ मोन सी । ३ यश गपी कुंज का कबूतर ।



सुन दो जब आर्या मर्मा,  
 याद कर लेता हूँ तभी ।  
 काव्य जो कभी रचों इस पर,  
 पढ़ें भी हों तिमरी घर पर ।

मर्मा का जाप लक्ष्मी विहारी,  
 अन्त में कर्मा गौ गुणित'—१८०

वासना का केवल साधन,  
 रहेगी जयतक रमणीगण<sup>१</sup>,  
 कोष का भाजन स्वयवरण<sup>२</sup>  
 रहेगा और सचेगा रण

इसी विधि होगा स्त्रत्व<sup>३</sup> हरण,  
 देंगे यो ही रण ककण ! १९२

देश मे सुख-निद्रा रचक<sup>४</sup>,  
 न मारेगा केर्ड तयतक ।  
 भरेगे करुणा से घर घर,  
 वनेंगे महलो के सँटहर ।

हास्य से होंगे वचित मुख,  
 मेघ वरसेगे केवल दुख । १९८

१ छिपा ।    २ इच्छानुसार कर चुनना ।    ३ प्रभिकार ।  
 ४ थोड़ा भी ।

परामर्श', दैन्य, कला-अन्दा,  
 नहीं लोंगे बुद्धि के घर !,  
 छई आशा पाता ह्योनी,  
 धपकन नली निता लोंगी ।

उद्योग स्वातन्त्र्यों के घर,  
 नहीं पै गिरा आने के घर । ३०४

[ ८ ]  
उपसंहार

यही है कोडमदेसर पुण्य,  
जहाँ गौरव धन बैठा गुण्य,  
गुणक हो भरा नीति पानी,  
तन्त्रि मिलती है मनमानी ।

रसो के सागर चढ़ते हैं,  
ज्वार पर ज्वार उमड़ते हैं । ६

धरित्री' हंसती औ' रोती,  
 पिरोती फूलों में मोती,  
 पतानी, 'यही मनी मोती,  
 मृगी आ जहाँ मौन होती,

नीर पीती, औ' धम गाती ।

व्याध भय निर्भय हो गोती । १०

यहीं कुल-नालाएँ आतीं,  
भाव-सुमनो को भर जातीं,  
चढ़ातीं, श्रद्धा दरशार्ती,  
शौर्य के पुण्य गीत गातीं,

आत्मबल सञ्चय कर जातीं,  
कि जिससे अमर नाम पातीं । २४

यही युग-युग की कल्पलता,  
यहीं शयिता<sup>१</sup> है प्रेम-रता ।  
पथिक दुःख<sup>२</sup> यहाँ विलस जाते,  
अश्रु पीते, जय मुन पाते—

कि बरसी यही रक्त-रोली,  
प्राण की यही हुई होली ।” ३०





